श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी

का

राष्ट्रचिंतन

- राष्ट्र का आत्मविश्वास
- हिन्दुत्व की धारणा
- राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का आधार
- कम्युनिज्म अपने ही कसौटी पर
- पिछड़े बंधुओं की समस्या
- संघे शक्तिः

राष्ट्र का आत्मविश्वास

-दत्तोपंत ठेंगड़ी

'परं वैभवम्'

स्वाभाविक ही है कि प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि अपना राष्ट्र वैभवसम्पन्न हो, अत: राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के स्वयंसेवक प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं जिसमें कहा हैं-'परं वैभवं नेतुम् एतत् स्वराष्ट्रम् (इस हमारे राष्ट्र को परम वैभव का स्थान प्राप्त कराने हेतु-) हमारा सारा प्रयास है । अब परम वैभव की परिभाषा करने की आवश्यकता नहीं । यह विश्व का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र हो, जैसा एक समय था कि मानव जाति ने व्यक्तिगत सामाजिक व्यवहार कैसा रखना चाहिये यह यदि सीखना हो तो यहां आकर सीखना होगा वैसी स्थिति, वैसा जगद्गुरु का स्थान भारत को फिर से प्राप्त हो ये सारी बातें परम वैभव की कल्पना में हैं। किन्तु एक तरफ हम आकांक्षा रखते हैं 'परं वैभवम्' की और दूसरी ओर प्रत्यक्ष वस्तुस्थिति तो दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही हैं-अर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सभी दृष्टि से । यह तो परस्पर विसंगत बात लगती है । किन्तु जैसे समुद्र की लहरों का क्रम है, लहर ऊपर जाती है, नीचे आती है, फिर ऊपर जाती है फिर नीचे आती है, वैसा हमारे राष्ट्र के इतिहास का है । एक समय ऐसा था, जब हमारी लहर ऊपर थी । हम जब 'परं वैभवम्' की आकांक्षा रखते हैं, तो हमारी आशा है कि आज नीचे आयी हुई यह लहर फिर ऊपर जायगी । आज तो यह बात अवश्य परस्पर विसंगत लगती है, किन्तु हमारा यह दृढ़ विश्वास है । आज तो हम निम्नतम बिन्दु पर खड़े हैं, किन्तु प्रार्थना रोज करते हैं कि 'परं वैभवं नेतुम् एतत् स्वराष्ट्रम् ।' इसे विसंगत मानने के कारण यह संदेह भी निर्माण हो सकता है कि यह एक मनमोहक (Wishful Thinking) स्वप्न मात्र है- होने वाली बात नहीं दिखायी देती । इस तरह एक निराशा का, विफलता का वातावरण फैलता है ।

सारे सफलता के मित्र

आज जब हम हिन्दुराष्ट्र की बात करते हैं, तो लोग कहते हैं कि 'भाई यह हिन्दू-हिन्दू मत कहो ।' क्योंकि आज 'हिन्दू' शब्द के साथ Association (सम्बद्धता) बताने में किसी को कोई गौरव अनुभव नहीं होता । आज की हमारी गिरी हुई हालत में लोग हिन्दू कहलाने में भी संकोच करते है । जहां गांव में कोई बड़ा सम्पन्न परिवार हो, तो वास्तव मैं रिश्तेदार भी नही वे भी उस परिवार से अपना संबंध बताते हैं, रिश्तेदारी जोड़ते है क्योंकि वें अनुभव करते हैं कि इस परिवार से नाता जोड़ने से अपनी प्रतिष्ठा बढ़ जायगी । लेकिन आगे यदि वह परिवार नीचे गिरता है, आर्थिक संकट में आता है, तो फिर नजदीक के रिश्तेदार भी अपना नाता छिपाना चाहते है । सोचते हैं कि ऐसे गिरे हुए परिवार से सम्बन्ध बताने से अपनी इज्जत घट जायगी । वही बात हिन्दू शब्द की है । आज इससे कोई सम्बन्ध बताना नहीं चाहता-सफलता के सारे मित्र, कठिन स्थिति में कोई साथ नहीं होता। सभी अपने आपको अलग बताना चाहते हैं ।

अब हम विचार करें कि हम लोगों में आज जो (Diffidence) पराभूत मनोवृत्ति 'हिन्दू' शब्द एवं विचार के बारे में निर्माण हुई, जो (Inferiority Complex) हीनता की भावना निर्माण हुई है, उसका क्या कारण है । स्पष्ट है कि आज हमारी गिरी हुई स्थिति है । विश्व के राष्ट्रों में जो निम्न श्रेणी में हैं उनमें हमारी गिनती की गई है, सैन्य, राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक अवनति की दृष्टि से की गई है । इसी समय पश्चिम के अन्य अनेक राष्ट्र बहुत आगे बढ़ गये हैं ऐसा लगता है । इसी कारण यह हीनता की भावना का निर्माण हुआ ।

वास्तविकता क्या है

आज हम पिछड़ गए हैं यह तो वस्तुस्थिति है किन्तु एक बात देखना है कि यह जो हमारा पिछड़ापन है, क्या इसके कारण है कि हमारे राष्ट्र में अग्रसर होने की क्षमता ही नहीं है? क्या हमारे अन्दर संसार का नेतृत्व करने की Potentiality (क्षमता) ही नही है? क्या हम हमेशा पिछड़े हुए राष्ट्र के नाते ही रहें? क्या क्षमता का मौलिक अभाव ही पिछड़ेपन का कारण है? क्या हम आगे बढ़ने के योग्य ही नहीं हैं? या क्या कुछ ऐसे कारण हैं जिन से हमारी क्षमताओं पर तात्कालिक परिस्थितिजन्य मर्यादाएं पड़ी है?

अच्छे-अच्छे राष्ट्र भी तो विपरीत परिस्थिति में पीछे हट सकते हैं । क्षमताएं रहते हुए भी आगे नहीं बढ़ पाते । ऐसे कितने ही उदाहरण हैं । पौलैण्ड का इतिहास देखें । बार-बार उसका विभाजन हुआ । ऐसा लगा कि अब यह ऊपर नहीं उठ सकेगा । जर्मनी की दोनों महायुद्धों में पराजय हुई । कुछ समय तक लगा कि अब यह तो पिछड़ गया, खत्म हो गया । इजराइल के लोग अठारह सौ साल तक अपनी मातृभूमि पर पैर भी न रखे सके। इतना दीर्घ रहा उनका पिछड़ापन । किंतु हम देखते हैं कि ये तीनों राष्ट्र ऊपर उठ आये, क्योंकि उनका पिछड़ापन परिस्थितिजन्य था, क्षमताएं होते हुए भी विपरीत परिस्थिति में वे पिछड़ गए ऐसा लगा, किंतु वे फिर से आगे आये । हमें भी देखना होगा कि हमारा आज का पिछड़ापन क्या वास्तव में क्षमता के अभाव के कारण है या मात्र परिस्थितिजन्य है ।

आत्मविश्वास की कमी क्यों?

इस दृष्टि से यदि विचार करें कि आत्मविश्वासहीन मनस्थिति में हमें रखने वाली कौनसी बातें हैं जो पश्चिम की तुलना में हमारे यहां नहीं दिखतीं, जिनके कारण हमें लगता है कि हमारे लिए कोई भविष्य नहीं? तो ऐसी दो बातें सामने आती हैं एक तो है Ideology (वैचारिक सिद्धांत), और दूसरी है Technology (तंत्रशास्त्र) । इनके बारे में पश्चिम से तुलना करने पर एक हीनत्व की भावना उत्पन्न होती है ।

वैचारिक सिद्धांतों का अर्थ है, आज की समस्याओं के उत्तर देने वाले विचार । हम पढ़ते हैं, परिस्थिति का अध्ययन करते हैं, हमारे यहां भी पश्चिम जैसी Industrial Civilization (उद्योग प्रधान सभ्यता एवं वातावरण) आ रही है, उसके साथ-साथ नये प्रश्न भी उठ रहे हैं । लेकिन उद्योग प्रधान समाज में उठने वाले उन प्रश्नों का समाधान हमारी प्राचीन परम्परा में नहीं मिलता ऐसा हमें लगता है । पश्चिम ने तो कई Isms (विचारधाराएं) को जन्म दिया है, हमारे पास तो कोई विचार धारा नहीं है ऐसा सोचा जाता है । धर्म संस्कृति आदि की बातें, जिन्हें Obscurantism (काल विसंगत विचारधारा) कहा जाता है, हम भले ही करते रहे, किंतु आज के सामाजिक एवं व्यक्तिगत प्रश्नों का उत्तर हिन्दू विचार में यदि उपलब्ध नहीं और आज की समस्याओं का उत्तर यदि हम दे नहीं सकते, तो स्पष्ट है कि हमारे अन्दर वह वैचारिक क्षमता ही

नहीं है, और यह हमारे पिछड़ने का कारण है, ऐसी एक हीनता की भावना बन जाती है ।

तंत्र शास्त्र की भी यही बात । विज्ञान एवं तन्त्र शास्त्र में पश्चिम की बहुत प्रगति हुई है । वे चन्द्रमा पर पहुंच गये, और भी ऊपर जाने की संभावना है । हम तो धरती पर भी ठीक ढंग से चलना जानते नहीं । यह देखने पर स्वाभाविक रूप से लगता है कि हमारे अन्दर क्षमता यदि वास्तव में होती, तो हम भी चन्द्रमा पर पहुंचते । नहीं पहुंचे इसका सीधा अर्थ यही लगता है कि हमारे पास उतनी क्षमता ही नही है ।

इन दो दिशाओं में पश्चिम की प्रगति हमें चकाचौंध कर देती है, और हमारे अन्दर अक्षमता की आत्मविश्वासहीन धारणा बन जाती है । लगता है कि हमारे अन्दर मौलिक रूप से ही अक्षमता (Inherent Incapacity) है आन्तरिक शक्ति (Potentiality) की कमी है । इसी कारण हम हिंदू विचार एवं हिन्दू जीवन के बारे में पराभूत मनोवृत्ति का अनुभव करने लगते हैं ।

आज की कमजोरी केवल परिस्थितिजन्य

इसलिये यह सोचना होगा कि हमारी आज की पिछड़ी हुई स्थिति क्या आंतरिक अक्षमता के कारण है, या मात्र परिस्थितिजन्य है । हिंदू इतिहास जिन्होंने पढ़ा है वे एक तथ्य तो जानते हैं कि पिछले साढ़े ग्यारह सौ साल का हमारा इतिहास Abnormal (असामान्य) रहा है । Normal (सामान्य) नहीं । यह लंबा काल- खण्ड विपरीत परिस्थिति का रहा है । उस कालखण्ड में हमें शांति प्राप्त नहीं हुई । इस समय पराये लोगों के आक्रमण हमारे ऊपर हुए जिनका प्रतिकार हम करते रहे । विभिन्न रणक्षेत्रों पर, विभिन्न सेनापतियों के नेतृत्व में भित्र-भिन्न शस्त्रास्त्रों से, लेकिन एक सत संघर्ष हिन्दू लम्बे समय तक करते रहे । इस तरह से यह साढ़े ग्यारह सौ साल का कालखण्ड विपरीत सा रहा। लम्बा युद्ध काल रहा । और इसी कारण, मानी हुई बात है कि कोई राष्ट्र जब युद्ध काल में रहता है स्वाभाविक प्रगति कर नहीं सकता । और तरह-तरह की बुराइयों को भी स्थान मिलता है । अपने यहां भी ऐसा हुआ । हमारा समाज गिरा हुआ हए है। सामाजिक दृष्टि से तरह-तरह के विभेद निर्माण हुए है । स्पृश्य-अस्पृश्य भाव उत्पन्न हुआ है, जाति भेद भी, भाषाओं का संघर्ष भी, संकीर्ण पंथ-भेद भी है । कहा जाता है कि यह हमारी

धर्म एवं संस्कृति के कारण हैं, किन्तु यह सत्य नहीं है । हमारे धर्म एवं संस्कृति की शिक्षा ऐसी नहीं है । यह विकृति तो साढ़े ग्यारह सौ साल के युद्ध काल में निर्माण हुई है ।

नयी स्मृति का निर्माण रुक गया

वास्तव में अपने यहां की पद्धति पूर्व में ऐसी रही कि धर्म के जो सनातन सिद्धांत हैं उनके प्रकाश में सोचा जाता था कि जैसे-जैसे समय बीतता जायगा और परिस्थितियां बदलती जायेंगी, नये प्रश्न निर्माण होंगे । पुराने प्रश्नों का मुकाबला करने के लिए जो पुराने नियम समाज में बने होंगे वे नई समस्याओं पर काबू पाने में असमर्थ हो जायेंगे अत: ऐसी स्थिति में क्या कुछ परिवर्तन आवश्यक है? ऐसे समय में समाज के श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा एकत्रित होना, परिस्थिति में क्या परिवर्तन आया-पुराने कौन से प्रश्न काल विसंगत हो गये, कौन से नियम कालबाह्य बन गये, नये प्रश्नों का स्वरूप क्या है इन सब बातों पर बारीकी से विचार करना और नयी परिस्थिति में उपयोगी ऐसे नये नियम बनाना जिन्हें 'स्मृति' कहा जाता है, ऐसी नयी स्मृतियों का निर्माण करना यह प्रक्रिया हमारे यहां अखण्ड चलती थी। इस स्वस्थ पद्धति के कारण हमारे यहां कई स्मृतियां निर्मित हुईं । केवल एक ही स्मृति बनायी गयी हो और वही कयामत तक चलेगी ऐसा आग्रह किया गया हो, ऐसा हमारे यहां नहीं हुआ । भिन्न-भिन्न स्मृतियां समय के अनुसार बनती गयीं । किन्तु बीच के साढे ग्यारह सौ साल के लम्बे कालखण्ड में जब अपना सम्पूर्ण देश युद्ध के वातावरण में रहा, हमारी गतिविधियाँ स्वाभाविक (साधारण) न रह पायी और इस कारण समाज जीवन में गतिरोध आया, समाज के नेता एकत्रित होकर सोच विचार करते हुए समाज रचना के नये नियम बना सकें इसके लिये अवकाश ही नहीं था । नयी स्मृतियां निर्माण नहीं हो सकीं और स्वभाविक है कि जहां गतिरोध आता है, पानी जब रुक जाता है, तो उसमें गन्दगी पैदा होती है । वैसे ही गतिरोध के कारण समाज जीवन में गन्दगी पैदा हुई, ऊंच-नीच, स्पृश्य-अस्पृश्य, जातिवाद आदि तरह-तरह की बीमारियां फैल गयीं । यह सारी कमजोरी विपरीत एवं युद्ध जन्य स्थिति होने के कारण आयीं Inherent incapacity (आन्तरिक अक्षमता) के कारण नही । अपरिवर्तनीय वैश्विक नियमों के प्रकाश में अखण्ड परिवर्तनशील समाज-रचना, एवं परिस्थिति के अनुकूल स्वयं अपनी समाज-रचना में परिवर्तन लाने की आंतरिक क्षमता यह हमारी वास्तव में विशेषता है । किन्तु केवल लम्बे कालखण्ड में संघर्ष में व्यस्त रहने के कारण ही वह प्रक्रिया टूट सी गयी तो वह हमारी अक्षमता के कारण कदापि नहीं ।

पश्चिम की समस्याएं यहां निर्माण ही नहीं हुईं

हम सोचें कि नयी समस्याओं का हल ढूंढ़ने वाले जो भिन्न-भिन्न Isms (वाद) पश्चिम तथा अन्य देशों में पैदा हुए-एक ओर Capitalism (पूंजीवाद) से लेकर दूसरी ओर Anarchism (अराजकतावाद) तक-ये किस प्रकार के कालखण्ड में पैदा हुए? ये सारे वाद और विचार Industrial Revolution (औद्योगिक क्रांति) के पश्चात ही पैदा हुए हैं। इस क्रांति के फलस्वरूप उत्पादन के साधनों में परिवर्तन आया, नये साधन सामने आये वृहत् उत्पादन की सामूहिक प्रक्रिया के कारण समाज रचना में परिवर्तन आया, नई समस्याएं भी निर्माण हुईं । फिर उन समस्याओं के समाधान ढूंढ़ते हुए अपने-अपने ढंग से अलग-अलग वाद निर्माण हुए, विकसित हूए । यह औद्योगिक क्रांति अभी-अभी हुई, कुछ ही समय पूर्व । उसके पश्चात प्राप्त नये प्रश्नों का उत्तर खोजने वाले नेताओं ने अपने-अपने ढंग से समाज रचना पर विचार एवं प्रक्रिया बतायी, इसलिये अलग-अलग वाद बने ।

अब चूंकि हम लोग इसी कालखण्ड के पूर्व से ही सतत युद्ध के वातावरण में रहे, इस तरह की औद्योगिक क्रांति हमारे यहां हुई नहीं । मेरे कहने का अर्थ यह नहीं है कि यदि हम शांति काल में होते तो बिल्कुल यूरप का अन्धानुकरण करते हुए, उन्होंने जिस प्रकार की औद्योगिक क्रांति एवं Machine Age (यंत्रयुग) का निर्माण किया, वैसा ही हम करते। लेकिन यदि हम शांति काल में होते, तो वहां की औद्योगिक क्रांति जैसी महत्वपूर्ण घटना क्या है, कैसी है, उसके परिणाम कौन से हैं, हमारे समाज की दृष्टि से उनके Implications (प्रभाव) क्या हैं यह सारा सोचकर उसमें से कुछ Adopt (स्वीकार) करना-कुछ Adapt (संस्कारित) करना या कोई और तीसरी बात विकसित करना आदि की गुंजाइश रहती । वैसे दुनिया के साथ सम्पर्क रखते हुए, वहां क्या होता हैं उसकी जानकारी रखते हुए उस पर सोच विचार करने की हमारे यहां हमेशा प्रक्रिया रही, किन्तु विपरीत स्थिति एवं संघर्ष के लम्बे कालखण्ड के कारण वह गुंजाइश नहीं थी । इसी कारण यहां वैसी, औद्योगिक क्रांति नहीं आयी । उसके परिणाम स्वरूप होने वाले परिवर्तन यहां नहीं हुए । स्वाभाविक ही उसमें से निर्माण होने वाले प्रश्न भी यहां उत्पन्न नहीं हुए । आज के सभी वाद जिन प्रश्नों के उत्तर में पैदा हुए हैं, वे प्रश्न ही यहां नहीं थे ।

जहां समस्या ही निर्माण नहीं हुई, वहां उसका उत्तर आपने क्यों नहीं दिया, और आपने उत्तर नहीं दिया इसलिये आप तो पिछडे हुए हैं, ऐसा कहना गलत होगा । जैसा कहा जाता है, प्रकृति में जहां-जहां बीमारी हए, वहां भगवान ने कोई औषधि भी रखी है । लेकिन जब बीमारी होगी तभी तो औषधि का विचार होता है । औद्योगिक-क्रांति के कारण जो बीमारियां पश्चिम में उत्पन्न हुईं वे जब हमारे यहाँ आयीं ही नहीं, तो ऐसा सोचना बड़ा अन्याय होगा कि चूंकि उन बीमारियों की औषधियां हमने बनायी नहीं इसलिए हमारे अन्दर वैचारिक क्षमता की ही कमी है । ऐसा सोचना भी गलत है ।

तंत्र-शास्त्र में पिछड़ापन केवल तात्कालिक

दूसरी बात तन्त्र शास्त्र की है । यूरोप का यह जो वैचारिक प्रवास शुरू हुआ वह European Renaissance (यूरोपीय पुनरुज्जीवन) के पश्चात शुरू हुआ । उसके पूर्व वैचारिक और विज्ञान एवं तंत्र शास्त्र की दृष्टि से पश्चिम कहां था, हिन्दुस्थान कहां था, इसकी यदि तुलना की जाय, तो दिखता है कि हिन्दुस्थान बहुत आगे बढ़ चुका था । यह तो पश्चिम के लोग भी मानते हैं कि हिन्दुस्थान सभी क्षेत्रों में एक अग्रसर राष्ट्र था, लेकिन यूरोपीय पुनरुज्जीवन के बाद हम पिछड़ते गये, वे आगे बढ़ते गये । और विशेष रूप से देखने की बात है, कि उसके बाद का कालखण्ड और हमारे साढे ग्यारह सौ साल के संघर्ष का कालखण्ड, दोनों समकालीन हैं । लगभग एक ही समय उधर यूरोपीय पुनरुज्जीवन होकर प्रगति की दौड़ चली, और इधर जीवन-मरण का लम्बा संघर्ष चलता रहा । उनके हाथ पैर खुले थे, वे अपनी क्षमता के अनुसार दौड़ सकते थे जबकि हमारे हाथ पैर बंधे हुए थे, हम जीवन-मृत्यु के संग्राम में रत थे । Normal progress (सामान्य तथा साधारण प्रगति) की बात तो छोड़ ही दीजिये, राष्ट्र के नाते जिन्दा भी रहेंगे या नहीं, यही प्रश्न हमारे सामने था । तो जब आदमी ऐसे संघर्ष में उलझा हुआ है, उस समय वह अन्य मुक्त लोगों के साथ Competition (प्रतियोगिता) करते हुए अन्य प्रगति कर सके, ऐसा सम्भव नहीं होता ।

परीक्षा में कोई विद्यार्थी जाता है । वह बहुत बुद्धिमान है, प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने की उसकी क्षमता है, हमेशा वह प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त करता आया है । किन्तु यदि परीक्षा के समय वह बीमार हो गया, १०४ डिग्री बुखार उसे है, बिस्तर से उठना

मुश्किल है फिर भी जैसे तैसे परीक्षा में पहुंच गया है, और वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण नहीं हो पाता, तो आप क्या कहेंगे कि उसके अन्दर स्वाभाविक सामर्थ्य ही नहीं है । यह गलत है । उसका प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण न होना मात्र परिस्थितिजन्य बात है । आन्तरिक कमजोरी का लक्षण नहीं ।

वैसे हमारा नवीन समस्याओं के उत्तर न दे पाना, तथा विज्ञान एवं तंत्र शास्त्र में पिछड़ जाना दोनों ही मात्र परिस्थितिजन्य बातें थीं, आंतरिक क्षमता के अभाव का परिणाम नहीं था ।, यह बात आखों से ओझल नहीं होना चाहिए । आंतरिक क्षमता हमारे अन्दर भरपूर है- वैचारिक दृष्टि से भी, विज्ञान एवं तन्त्र शास्त्र की दृष्टि से भी । पश्चिम से हमारी यह मौलिक क्षमता अधिक है, उतना ही नहीं, जो बातें हिन्दू राष्ट्र में विद्यमान हैं वे पश्चिम में भी नहीं हैं, ऐसा अनुभव के आधार पर कहा जा सकता है । अत: हमारी आन्तरिक मौलिक क्षमता के बारे में हमें कोई निराशा का कारण नहीं है । स्वतंत्रता, समता-किन्तु बंधुता कहां ?

पश्चिम में क्रांतिकारी परिवर्तनों का प्रादुर्भाव प्रथम French Revolution (फ्रांस की राज्य क्रांति) के समय हुआ । उस क्रांति में जिस विभूती का उद्घोष किया गया वह थी- 'स्वतंत्रता, समता बन्धुता' । आज इन तीन उच्च आदर्श सूत्रों का प्रत्यक्ष व्यवहार कहां तक हो सकता है यह हम देख सकते है । तीस साल पहले यह चर्चा बौद्धिक स्तर पर होती होगी, किन्तु आज उसका प्रत्यक्ष अनुभव सामने है । यूरोप में इनका जितना प्रयोग आज तक हो पाया है, उसमें प्रथम स्थापना की गई स्वतंत्रता की, माने व्यक्तिस्वातंत्र्य की ।

शोषण की स्वतंत्रता-समता कहाँ ?

किन्तु मनुष्य का मन जैसा पहले था वैसा ही रहा, इसलिए धीरे-धीरे व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ दूसरों की शोषण करने का स्वातंत्र्य भी व्यक्ति लेता है ऐसा यूरोप ने अनुभव किया। यदि हर एक व्यक्ति को स्वतंत्रता है, चाहे जैसी अनिर्बन्ध प्रगति करने का स्वातंत्र्य है, और यदि हर एक व्यक्ति साथ-साथ अहम्वादी भी होने के कारण वह केवल अपना ही विचार करता हैं, तो फिर बलवान को दुर्बल का शोषण क्यों नहीं करना चाहिये, धनवान को निर्धन का शोषण क्यों नहीं करना चाहिये, बुद्धिवान को निर्बुद्ध का शोषण क्यों नहीं

करना चाहिये इसका कोई उत्तर, कोई Logic (तर्क) समाजशास्त्रियों के पास नहीं रहा। इस प्रकार व्यक्तिस्वातंत्र्य के साथ शोषण स्वातंत्र्य भी आ पहुंचा ।

समता-स्वतंत्रता कहाँ?

यह शोषण स्वातंत्र्य जब विकराल रूप में बढ़ता गया, थोड़े बलवान, धनवान बुद्धिवान लोग बहुजन समाज का शोषण करते हुए जब दिखायी देने लगे, तो उसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई कि, यह शोषण समाप्त होना चाहिये । शोषण स्वातंत्र्य कैसे आया, व्यक्तिस्वातंत्र्य के कारण, तो व्यक्तिस्वातंत्र्य भी समाप्त होना चाहिये ।' फिर सोचा गया कि ऐसी एक समाज रचना लाना चाहिये जिसमें व्यक्ति को कोई स्वतंत्रता नहीं होगी । फिर कोई किसी का शोषण नहीं कर सकेगा । इस तरह की समाज-रचना का नियंत्रण करने वाली एक सर्वेसर्वा सत्ता (Dictatorship) निर्माण करने का विचार आया । याने दूसरा उद्घोष जो 'समता' का था, उसे लाने के लिये स्वातंत्र्य का अपहरण करते हुए, समता की प्रस्थापना किसी एकाधिकारी शासकीय सत्ता के सहारे करने की बात चल पड़ी । उसी के फलस्वरूप Communist States (साम्यवादी शासन) निर्माण हुए ।

स्वतंत्रता समाप्त-लेकिन समता भी गायब

किन्तु आज इतने देशों में साम्यवादी शासन है, साम्यवादियों की तानाशाही प्रत्यक्ष कई देशों में चलती हुई दिखती है, हम समता की स्थापना करेंगे इस प्रतिज्ञा के साथ उन्होंने शासन ग्रहण किया है । रूस में ५०-६० वर्ष हो गये, अन्य देशों में भी ३० साल से अधिक समय बीता, किन्तु समता की स्थापना नहीं हुई । व्यक्ति स्वातंत्र्य का अपहरण तो अवश्य हुआ किन्तु समता नहीं आयी । इसी कारण हरएक देश में विद्रोह की भावना बढ रही है । रूस में भी, चीन में भी । जिन शोषित, पीड़ित, दलित लोगों के नाम से साम्यवाद आया, ऐसे ही लोगों ने पोलेण्ड में साम्यवादी शासन के विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया था, जिसके सामने सत्ता को झुकना पड़ा यह ताजा इतिहास है ।

तो समता वहां आ नहीं सकी । क्योंकि हम सबकी स्वतंत्रता का अपहरण करेंगे, लेकिन सबको समान बनायेगे ऐसी प्रतिज्ञा करने वाली एकाधिकारी सत्ता की Agency (माध्यम) स्वयं लोगों से Unequal (असमान) बन जाती है । सबको समान बनाने की ताकत सत्ता के हाथों निहित होने के कारण ही सत्ता के लोग बाकी लोगों से असमान हो जाते हैं । The rulers and the ruled (शासक और शासित) इस तरह का भेदभाव

निर्माण होने का प्रत्यक्ष अनुभव कम्युनिस्ट देशों में आ रहा है । अतएव ऐसा हुआ कि स्वतन्त्रता लायी, तो वहां अहम् के कारण शोषण आया शोषण के कारण समता का भंग हुआ । समता के नाम पर कोई शासन-वयवस्था लायी तो स्वतन्त्रता का अपहरण तो हुआ, लेकिन समता भी नहीं आ सकी ।

और बन्धुता का तो नाम नहीं

और बन्धुता की तो बात ही नहीं । क्योंकि लोग एक दूसरे को बन्धु समझे इसका कोई कारण पश्चिम की संस्कृति में नहीं है । उस अहम्वादी संस्कृति में इसका कोई उत्तर नहीं है । इस प्रकार मनुष्य के मन का विचार न करते हुए केवल रचना के पीछे सारी शक्ति-युक्ति लगाने के कारण, आज पश्चिमी राष्ट्र एक तरह से Wildreness (असमंजस) में हैं। आगे का रास्ता कैसे निकालना इस विषय में बडे संभ्रम में हैं । स्वतंत्रता आती है, तो समता नष्ट होती है, समता प्रस्थापित करने का प्रयास करते हैं, तो स्वतंत्रता का अपहरण होता है, फिर भी समता नहीं आती और बन्धुता का तो दूर से भी दर्शन नही । इन सबका क्या कारण?

इस संभ्रम का समाधान हिन्दु विचार में ही

कारण यही है कि रचना में आप भले ही परिवर्तन कीजिए, मनुष्य का मन जब तक सुसंस्कारित नहीं है, जब तक कम से कम सम्पूर्ण विश्व की एकात्मता की दिशा में मेरा वैचारिक प्रवास शुरू होना चाहिए यह अनुभूति, यह Value of life दिए (जीवन मूल्य) समाज के व्यक्ति- व्यक्ति में प्रस्थापित नहीं होता, तब तक स्वातंत्र्य और समता इन दो आदर्शों का मेल बैठना संभव नहीं । इस तरह का साक्षात्कार पश्चिम में व्यक्तिगत रूप से होगा, किंतु सामाजिक स्तर पर जीवन मूल्य के रूप में किसी समाज ने अपनाया होगा, तो वह एक हिंदू समाज ने ही अपनाया है । व्यक्तिगत स्तर पर अनेक लोगों ने प्रगति की होगी, किन्तु सामाजिक स्तर पर इस मौलिक जीवन मूल्य की प्रस्थापना केवल हिंदू विचार ने की है । स्वातंत्र्य एवं समता में मेल बिठाना (दोनों Incompatible (परस्पर विरोधी) नही है, उनका सामंजस्य स्थापित करना केवल इसी आधार पर हो सकता है कि हम सब एक हैं-बन्धु हैं ।

वैसे हमारे 'सर्व खल्विदं ब्रम्ह' का अनुवाद All are one (हम सारे एक हैं) नहीं होता तो सही अनुवाद होता है All is one (सारा सब कुछ एक ही है) । Are (हम सारे) कहने

से बात आती है कि हम अलग-अलग हैं, किंतु अब एकात्मता निर्माण करना है । ऐसा नहीं है । जिसे हम अलग-अलग समझते हैं वह सारा सब कुछ एक ही है, (Is one) अस्तित्व मूलत: एक ही है, हम सारे उसके अविष्कार मात्र है । गहने अलग-अलग होगे, किंतु मूलतत्व सोना एक ही है । खाद्य चीजें अलग बनी होंगी किंतु मूलतत्व आटा एक ही होता है । इस साक्षात्कार के आधार पर ही सब बातों में मेल बैठता है और किसी भी रचना में स्थायित्व आ सकता है अन्यथा नही यह हमारा हिंदू विचार आज पश्चिम के प्रत्यक्ष अनुभव देखने पर स्पष्ट रूप से सही नजर आता है पिछले साढ़े ग्यारह सौ वर्ष, असाधारण परिस्थिति के कारण हमारा वैचारिक प्रवास अधिक न हो सका, फिर भी पश्चिम के चकाचौंध करा देने वाले सारें Isms (वाद) कोई स्थायित्व एवं स्वास्थ्य, समाज को देने की क्षमता नहीं रखते वह क्षमता केवल हिंदू विचार में ही है, हिंदू जीवन मूल्यो में ही है, यह बात उनके अनुभव के आधार पर स्पष्ट रूप से कही जा सकती है । अतएव वैचारिक दृष्टि से हमें किसी प्रकार की आत्मविश्वास- हीनता और ग्लानि अनुभव करने का कोई कारण नही हैं । संसार को आज भी स्थायित्व की ओर मार्गदर्शन करने की क्षमता हिंन्दू विचार में भरपूर है, यह बात स्पष्ट है, हमारे लिए गर्व की बात है ।

विवेकहीन वैज्ञानिक प्रगति में से क्या पैदा हुआ ?

जिस समय प्रजनन शास्त्रियों ने यह घोषणा की कि सन् २०४० तक चाहे जिस गुणधर्म का आदमी शास्त्र बनाकर दे ्सकेगा, वहां के वैज्ञानिक तथा विचारक यह सोचने लगे कि इस तरह की प्रगति के फलस्वरूप विज्ञान महात्मा गांधी, भगवान बुद्ध और जीजस क्राइस्ट जैसे ही आदमी निर्माण करेगा इसकी क्या Guarantee (भरोसा) है 'हिलटर, मुसोलिनी समान राक्षसों की निर्मिती नहीं होगी इसका क्या भरोसा है? वे सोचने लगे कि इसलिए विज्ञान की प्रगति की दिशा यदि तय नहीं की गई, तो दुनिया में अनर्थ हो सकता है, दुष्परिणाम हो सकते हैं ।

इस भय का प्रत्यक्ष अनुभव पश्चिम के लोगों ने दूसरे महायुद्ध के समय किया । अणयुग के प्रथम पुरुष राबर्ट ओपेनहायमर, जिनकी अभी-अभी मृत्यु हुई, ने जिस समय अणु विस्फोट प्रयोग किया, तब उनके मन में ऐसी कल्पना नहीं थी कि इसका उपयोग नरसंहार के लिए किया जायेगा । वे स्वयं संहारक विचार के नहीं थे, इसका परिचय उनकी अपनी डायरी से मिलता है । उन्होंने लिख रखा है- मैने अणु विस्फोट के कई

प्रयोग किये थे किन्तु वे असफल हुए थे । यह आखरी प्रयोग दूर के किसी रेगि- स्तान में किया जा रहा था, तब भी उसकी सफलता के बारे में मुझे सन्देह था । मैं दूर से यन्त्र द्वारा देख रहा था, इतने में विस्फोट हुआ । इस प्रयोग में सफल विस्फोट होने के कारण उस समय जो दृश्य निर्माण हुआ, उसके कारण मेरे मुख से स्वाभाविक उद्गार निकले- I am become death, the shatterer of th e words! (मै तो मृत्यु बन गया, दुनिया की तबाही करने वाला साक्षात मृत्यु) ।

अब यह जो उन्होंने कहा, यह भगवद्गीता का है । "कालोऽस्मि लोकक्षयकृत प्रवृत: ।" यह बड़ी आश्चर्य की बात है । अणुविस्फोट का दृश्य देखकर पश्चिम के किसी वैज्ञानिक के मुख से यदि कुछ उद्गार निकलता है वह या तो विज्ञान के सम्बन्ध में निकलता, या तो बाइबल में से निकलता । लेकिन उन्होने जो कहा, वह तो गीता का वचन था, यह एक संयोग है । इससे उनके विचारों का, स्वभाव का परिचय तो मिलता है । लेकिन बाद में प्रत्यक्ष महायुद्ध के दौरान राबर्ट ओपेनहायमर के अन्वेषण का प्रयोग नरसंहार के लिए किया गया, तो वे वैज्ञानिक सोचने लगे कि यह हमने क्या किया ? क्या इसलिए हमने सारी तपश्चर्या की थी?

विवेक का अंकुश

आज इस संभ्रम में पश्चिम है कि मात्र नोबेल प्राइज प्राप्त करने के लिये पता नहीं, विज्ञान की प्रगति में क्या-क्या किया जायगा । उन पर नियंत्रण रखने की आवश्यकता है, यह विचार पश्चिम में उठने लगा है । प्रजनन शास्त्र की सम्भावित उपलब्धि की जो बात बताई, उस पर अभी तीन वर्ष पूर्व अमेरिका के सिएटल नगर में बड़ी प्रयोग शाला में प्रयोग किये जा रहे थे । वैज्ञानिक इस स्थिति में पहुंच गये थे कि क्रांतिकारी उपलब्धि प्राप्त हो जाती (a break through) । किन्तु उस प्रयोग के कारण और कोई विनाशकारी तत्व तो नहीं बनेंगे, इसका कोई अंदाज उन्हें नहीं हुआ था । जब यह बात फैल गई, तो सिएटल नगर निगम ने उन वैज्ञानिकों को पूछा कि इस प्रयोग के कारण जो Bacteroa (जन्तु) निर्माण होंगे, उनकी जाति कौनसी होगी वे बाहर फैले तो उनका मनुष्य जाति पर क्या परिणाम होगा? तो वे कहने लगे कि यह तो नहीं बताया जा सकता । हो सकता है, कि ये जन्तु यदि प्रयोग शाला के बाहर जाते हैं तो एक तिहाई मनुष्य जाति का संहार

हो जाय । तो सिएटल नगर निगम ने उन पर निर्बन्ध लगाये कि यह प्रयोग आप नहीं करेंगे। हमें ऐसी प्रगति नहीं चाहिए ।

कम्प्यूटर विज्ञान (सायबरनेटिक्स) के प्रणेता डा० बिन्झेर ने, जो स्वयं वैज्ञानिक हैं, प्रश्न उठाया कि नोबेल प्राइज के लिये, इतिहास में अपना नाम लिखवाने के लिए वैज्ञानिक चाहे जो प्रयोग करेगा, किन्तु मनुष्य जाति को उसकी कितनी कीमत चुकाना पड़ेगी? ऐसा तो नहीं, कि वह कीमत भयानक होगी? विज्ञान को यदि अनिर्बंध स्वतन्त्रता दी गयी तो उसके परिणाम मनुष्य जाति के लिये विनाशकारी तो नहीं होंगे? इस पर विचार करने पर जोर देते हुए जाए डा. बिन्झेर ने एक उदाहरण देकर अपनी आशंका प्रकट की - अंग्रेजी में एक प्रख्यात कहानी है । Monekey's Paw (मंकीज् पा) नाम है उसका। यूरोप के किसी एक जगह शाम के समय एक परिवार के यहां एक आदमी पहुंचा। कडाके की सर्दी थी, उसने कहा आज की रात मैं, आपके यहां रुककर सबेरे चला जाऊंगा। उसका स्वागत हुआ । दूसरे दिन सवेरे जब परिवार के लोग उनके साथ नाश्ता करने बैठे, तो उसकी जेब से कोई चीज गिरी । पिताजी जी ने उससे पूछा यह क्या है? उसने कहा यह है मंकीज् पा । इसकी विशेषता है कि यह जिसके पास होगा, उसकी पहली तीन इच्छाएं पूरी करेगा । किन्तु एक बात और उस आदमी पर कुछ संकट भी आयेगा, जो इसे पास रखेगा ।

अब पिताजी को कुछ दो सौ पौण्ड की जरूरत थी । उन्होंने अपने लड़के से मांगना ठीक नहीं समझा । सोचा, मंकीज् पा रख लेंगे, अपनी इच्छा पूरी होने पर इसे फेंक देंगे । उन्होंने उस आदमी से उसे रख लिया । लड़का जब फैक्टरी में काम पर जाने लगा, तो उसने कहा भी कि पिताजी, इसके साथ खतरा भी होता है । पिताजी ने कहा तुम चिन्ता न करो । थोडी देर बाद मै इसे छोड़ दूंगा ।

दोपहर के समय एक आदमी आया, उसने पूछताछ की, और पिताजी को दो सौ पौंड का चेक देकर रसीद ली और वह चलने लगा । पिताजी बड़े खुश हुए कि मंकीज् पा के कारण अपनी इच्छा पूरी हुई । फिर उन्होंने रोककर पूछा, भाई यह चेक है किस बात का? मुझे क्यों दिया गया?

उसने कहा, मैं दुखी हूं । आपका लड़का फैक्टरी में आज मशीन की चपेट में आया और उसकी मृत्यु हो गई है । कर्मचारी सुरक्षा योजना के अन्तर्गत यह पहली किश्त आपको मालिकों ने भेजी है । अगली किश्तें भी नियमित रूप से दी जायेंगी । यह उहाहरण देते हुए डा. बिन्झेर ने प्रश्न किया कि विज्ञान एवं तंत्र शास्त्र के कारण हमारी कुछ इच्छाएं तो पूरी होगी, लेकिन उसकी कीमत कितनी देना पड़ेगी? सम्पूर्ण नरसंहार यह तो उसका मूल्य नहीं?

और इस दृष्टि से उन्होंने कहा कि तकनीकी जानकारी (Technical know -how) में प्रगति होना मनुष्य के लिए सुरक्षा की बात नहीं है जब तक उस जानकारी के ऊपर Technical know-what (तकनीकी उद्देश्य) का नियंत्रण न हो । तकनीकी जानकारी का मतलब उन्होंने बताया कि निर्धारित उद्देश्य कैसे प्राप्त करना । किन्तु तकनीकी उद्देश्य का अर्थ बताया कि कौन से उद्देश्य हमें तकनीकी ज्ञान के कारण प्राप्त करना है । यदि उद्देश्य का जानकारी पर नियंत्रण नहीं रहा, तो दुर्गति हो जायगी । इस विषय पर गम्भीर चिन्ता प्रकट करते हुए उन्होंने कहा Technicalombudsman (तकनीकी विवेकशील नियंत्रक) होना चाहिये जो एक नियंत्रक शक्ति के रूप में विज्ञान एवं तंत्रशास्त्र को उद्देश्य प्रदान करते हुये उस पर अंकुश रखेगा ।

आगे उन्होंने यह भी स्पष्ट रूप से कहा कि इस नियंत्रक शक्ति के संचालन में वैज्ञानिक एवं तंत्वज्ञों को नही रखना चाहिये क्योंकि नोबेल प्राइज के चक्कर में उन्हें दुनिया में क्या होगा इसकी फिक्र नहीं । सम्पूर्ण मानव जाति के बारे में जिनके मन में प्रेम है, मानव जाति का जो कल्याण चाहतें हैं, जिनका ऊंचा सांस्कृतिक स्तर है, ऐसे संस्कारित लोगों की यह नियंत्रक शक्ति होनी चाहिये । उनके ही नियंत्रण में विज्ञान एवं तंत्र शास्त्र की प्रगति होनी चाहिये । स्वयं वैज्ञानिक होते हुए भी डा० बिन्झेर ने यह बात कही ।

सारांश

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इन सभी बातों को सोचने पर वास्तविक स्थिति स्पष्ट हो जाती है । हमारे दृष्टाओं का विचार था कि बाह्य परिस्थिति और मनुष्य का मन, दोनों का महत्व है । दोनों एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं, किन्तु अधिक मौलिक बात है मनष्य का मन । वह जब तक सुसंस्कारित नहीं होता तब तक किसी भी समाज रचना

में स्थायित्व एवं स्वास्थ्य नहीं निर्माण हो सकता । यह स्वयं पश्चिम के अनुभवों के आधार पर भी कहा जा सकता है ।

इसलिये हम जो पश्चिम के वैचारिक प्रवास के कारण चकाचौंध हो रहे हैं, साथ में उनकी विज्ञान एवं तन्त्रशास्त्र की प्रगति को देखते हुए हम आश्चर्यचकित हो रहे हैं, उनका विचार करने पर यही प्रतीत होता है कि अन्ततोगत्वा मनुष्य के मन के संस्कारों की हमारे देश की प्रणाली असीम महत्व रखती है । यह प्रणाली हमारे यहां होने के कारण, 'सारा अस्तित्व एक है और हम सभी उसके अंश है' यह धारणा हमारे Value of life (जीवन मूल्य) में होने के कारण, हमारे यहाँ मनुष्य का मन 'अहम्' के ऊपर उठ सकता है, हमेशा उठता आया है ।

आज हम पिछड़ गये हैं यह बात सही है । ग्यारह सौ-साढे ग्यारह सौ साल के गतिरोध के कारण, हमारे व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में तरह-तरह की गन्दगी पैदा होने के कारण, हम पिछड़ गये हैं । किन्तु यह हमारी किसी अन्तरिक अक्षमता के के कारण नहीं, मात्र परिस्थितिजन्य है । हमारी अन्तरिक क्षमता भरपूर है-वैचारिक भी, विज्ञान एवं तन्त्रशास्त्र की भी । इसके अतिरिक्त हमारी एक और विशेष क्षमता है, जो हमें मनुष्य जाति को बचाने वाले विवेकपूर्ण अंकुश का निर्माण करने की भूमिका प्रदान करती है, क्योंकि हम अपने संस्कारों के कारण अहम् के ऊपर उठ सकते है । परस्पर विभेदों में विविधता का साक्षात्कार करना, विविधता के अन्तर्गत बहने वाले एकात्मता के प्रवाह का अनुभव करना यह क्षमता हम अपने संस्कारों के आधार पर निश्चय ही रखते हैं, इसका हमें आत्मविश्वास होना चाहिये । यही विश्वास होने के कारण अर्नाल्ड टायन्बी ने हमारी आज की विपरीत स्थिति को जानते हुए भी कहा कि आने वाले भविष्य में यदि मनुष्य जाति को बचाना है, तो यह क्षमता केवल हिन्दुस्तान में ही है । उनका यह विश्वास तथा हमारी प्रार्थना में हमारी 'परं वैभवं नेतुम् एतत् स्वराष्ट्रम्' की आकांक्षा, दोनों एक ही दिशा में जाने वाली बातें है, केवल wishful thinking (दिवास्वप्न) नहीं । क्योंकि हमारे अन्दर आवश्यक स्वाभाविक क्षमता पर्याप्त मात्रा में है ।

आज भी विज्ञान एवं तंत्र शास्त्र में तथा अन्य तकनीकी प्रक्रियाओं में हमारे लोग अमेरिकन, जर्मन, रशियन लोगों के बराबरी से कार्य कर रहे हैं । और वैचारिक दृष्टि से भी हमारे विचारक आज पीछे नहीं हैं । कोई ऐसा विचार नहीं जिसकी हिन्दू कल्पना

नहीं कर सकता । जब कार्ल मार्क्स ने अपना 'दास कैपिटल' ग्रन्थ प्रकाशित किया वीर काम्यून निरपेक्ष सम्पूर्ण समूह व्यवस्था) की कल्पना रखी,उसी समय लगभग उसी वर्ष, श्रीविष्णुबुवा ब्रह्मचारी नाम के एक हमारे यहां के विचारक ने स्वतंत्र रूप से विचार रखते हुए अपने ग्रन्थ में भी काम्यून जैसी योजना का वर्णन किया है । एक ही समय दोनों ग्रन्थ स्वतन्त्र रूप से, एक दूसरे की जानकारी न होते हुए, लिखे गए हैं । यह मतलब नहीं कि काम्यून कोई प्रमाणभूत रचना है । किंतु इससे एक बात तो स्पष्ट नजर आती है कि वैचारिक दृष्टि से हिन्दू प्रतिभा पश्चिम से किसी भी तरह से पीछे नहीं । विज्ञान एवं तन्त्रशास्त्र में भी श्री हरबंसलाल खुराना, श्री सी. व्ही. रमण, श्री जगदीशचन्द्र बोस जैसे हिन्दू विख्यात हैं । इस प्रकार हमारे अन्दर क्षमतायें भरपूर है । हमारी क्षमता सम्पूर्ण विश्व को सन्तुलित मार्गदर्शन करने की भी है, जो अन्य कहीं नहीं है ।

इस विश्वास के साथ यदि हमने सोचा, तो कभी-कभी 'हिन्दू' शब्द के बारे में हमें जो एक न्यूनत्व की ग्लानि, एक आत्मविश्वासहीनता अनुभव होती है वह असमर्थनीय (Unwarranted) है यह बात हमारे समझ में आयेगी, और आज की परिस्थिति में भी परम वैभव की दिशा में मार्गक्रमण करने का आत्मविश्वास हमारे अन्दर जागृत होगा।